अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में देवनागरी लिपि हिन्दी की वैज्ञानिकता के विविध आयाम

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव,

एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डी0 एस0 एम0 राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ,उ.प्र.

किसी भाषा को देखने व समझने के प्रायः तीन सन्दर्भों की आवश्यकता होती है। प्रथम यह कि उस भाषा का अपना क्षेत्रीय सन्दर्भ कैसा है। दूसरा उस भाषा का अपना राष्ट्रीय सन्दर्भ कैसा है। और तीसरे रूप में अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में उसकी क्या पहचान एवं अस्मिता है। अर्थात प्रत्येक भाषा का पहले स्वदेशी सन्दर्भ होता है, फिर उसके प्रचार प्रसार के साथ अपने क्षेत्र के बाहर स्वदेशीय सन्दर्भ बनता है फिर विभिन्न कारणों से अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ। हिन्दी एक ऐसी भाषा है क्योंकि हिन्दी भाषा एक ऐसे भाषा परिवार की एक आधुनिक भाषाहै जो विश्व में सबसे बड़ा परिवार है। तथा जिसके बोलने वाले विश्व में सबसे अधिक हैं।

हिन्दी में एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा होने की पूर्ण क्षमता है। इस क्षमता की अगर पहचान नहीं की जाएगी तो हिन्दी तकनीकी दौड़ में काफी पीछे रह जाएगी। हिन्दी भाषा भाषी समुदाय विशाल है, किन्तु उसे अपनी विशालता का अनुमान नहीं होता। हिन्दी अपने भौगोलिक विस्तार तथा एशिया की तीन–चार प्रमुख भाषाओं में से एक होने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उभरकर तो आ चुकी है किन्तु अभी उसे अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ में पूरी तरह एक उपयुक्त भाषा बनाने के लिए सबसे बड़ी जिम्मेदारी हिन्दी भाषियों की है। इसके लिए सबसे अधिक प्रयास हिन्दी वालों को ही करना है। लेकिन हिन्दीजन की सबसे बड़ी दुर्बलता यही है कि वह स्वाधीन होने के बाद भी धीरे–धीरे आत्म विश्वास खो बैठा है। उसे अपनी संस्कृति और अपनी भाषा में कुछ संकोच होने लगा है। वह सोचने लगा है कि हिन्दी कहीं क्षेत्रीय तो नहीं है, किसी की रग तो नहीं दुख रही है, किसी का अधिकार तो नहीं छीन रही है, या फिर कहीं हिन्दी प्रभुओं की भाषा बनने की प्रतिष्पर्धा तो नहीं कर रही है।[1]

किन्तु यहाँ प्रश्न यह भी है कि जो भाषा अपने ही देश में अमान्य है, वह सारे विश्व में मान्य कैसे हो सकती है? यदि हम कहें कि भारत की राष्ट्र भाषा हिन्दी है तो इसका बड़ा कोई संवैधनिक झूठ नहीं हो सकता है। यह एक प्रकार का संवैधनिक दिवास्वप्न है। सत्य तो यह है कि भारत की राज भाषा अंग्रेजी है। सरकार का सारा काम खासतौर से मौलिक काम अंग्रेजी में ही होता है। इससे बड़ा कोई ढोंग क्या होगा कि स्वराष्ट्र में तो अंग्रेजी चलती रहे और संयुक्त राष्ट्र में आप हिन्दी की मांग करते हैं। सबसे दुखद बात यह है कि जिस देश में मौलिक कामों, सर्वोच्च और सर्वश्रेष्ठ कामों में अपनी भाषा का इस्तेमाल ही न हो और हम सोचें कि वह भाषा संयुक्त राष्ट्र में प्रतिष्ठित कर देने से रातो–रात विश्वभाषा बन जाएगी तो हमारी यह सोच बिल्कुल भी तर्क संगत नहीं है। जिसे संयुक्त राष्ट्र माने उसे दुनिया के सारे राष्ट्र भी मान लें, यह जरूरी नहीं है। संख्या तथा पैसे के बल पर अरबी भाषा संयुक्त राष्ट्र में प्रतिष्ठित हो गई। किन्तु अरब देशों के बाहर वह कहाँ बोली जाती है? कौन उसको विश्वभाषा मानता है? अरबी को संयुक्त की भाषा बनाने पर अरबों रूपये खर्च हो गये लेकिन दर्जन–भर गैर अरब राष्ट्रों ने भी

विश्व भाषा नहीं माना। अरबी आज भी वहीं खड़ी है, जहाँ पचास साल पहले खड़ी थी। लेकिन यह बात हिन्दी पर लागू नहीं होती। यदि हिन्दी संयुक्त राष्ट्र में प्रतिष्ठित हो जाती है तो उसकी शक्ति और प्रभाव के नये आयाम खुल जाएँगें।[2]

इन सबके बाद हिन्दी के कुछ उजले पक्ष भी हैं,क्योंकिअन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिन्दी के कई रंग और कई पक्ष हैं। मॉरीशस, फीजी, गुयाना, त्रिनिदाद आदि देशों में हिन्दी का व्यापक प्रयोग होता है। इन देशों के हिन्दी प्रेमी इस भाषा को केवल भाषा के रूप में व्यवहार में नहीं लाते, अपितु उसे वे अपनी संस्कृति का एक अंग भी समझते हैं। हिन्दी को वे अपने ऐतिहासिक सम्बन्धों की सांस्कृतिक कड़ी और भाषात्मक एकता का मूल आधार मानते हैं।[3]यहाँ यह बताना आवश्यक है कि विदेशों में हिन्दी का प्रचार प्रसार भारतीय मजदूर भाई–बहनों के द्वारा किया गया। उनकी यह सांस्कृतिक धरोहर रही और अपने सत्व से वहाँ कायम रही। हिन्दी का जन्म संस्कृत और जनता की आम भाषा के मिलने से हुआ। इस भाषा को हिन्दी भाषा–भाषियों ने संवारा और बढ़ाया। केशव चन्द्र सेन, राजाराममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी जैसे अहिन्दी भाषा–भाषी महान पुरूषों ने इसके प्रचार–प्रसार पर बल दिया। विदेशी विद्वानों ने भी इसकी सेवा की और ग्रियर्सन जैसे व्यक्तियों ने हिन्दी में ज्ञान का खजाना बढ़ाया। महात्मा गांधी ने कहा कि यदि भारत को एक राष्ट्र बनाना है तो चाहे कोई माने या न माने, राष्ट्रभाषा तो हिन्दी ही बन सकती है। तमिल के महाकवि सुब्रह्मनियम भारती ने भी राष्ट्र की एकता के लिए राष्ट्र–भाषा हिन्दी पर ही जोर दिया।

हिन्दी मुक्ति के लिए संघर्ष की भाषा रही है और मुक्ति केवल अपने देश के लिए नहीं, उन समस्त देशों के लिए जो उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद और प्रभाव वाद में जकड़े जा रहे हैं या जकड़े हुए हैं। यह स्मरणीय है कि अपने देश में अपनी भाषा रहनी चाहिए यह आवाज उठाने की प्रेरणा सबसे पहले जिसके मन में उठी, वे हिन्दी भाषी नहीं थे। उनका मत था कि इस विशाल देश के जन समुदाय के बीच एक संवाद स्थापित करने की आवश्यकता है और यह संवाद एक ऐसी भाषा से ही स्थापित हो सकता है जो संतों, फकीरों, यात्रियों, देश के एक छोर से दूसरे छोर तक जाने वाले व्यापारियों, दूर–दूर तक जाने वाले सिपाहियों के आपसी व्यवहार की भाषा सदियों से रही हो। वे यह पहचानते थे कि यह भाषा किसी न किसी रूप में हिन्दी थी। यह संगीत, कला पर भी छाई और बाजार पर भी छाई रही। अनेक सामाजिक, राजनैतिक कारणों के साथ–साथ भाषा वैज्ञानिक कारक हैं जो हिन्दी को विश्वभाषा का स्थान दिलाने का अधिकार है। हिन्दी अपने शब्द भण्डार और विशेष पारिभाषिक शब्दावली के कारण भारत में ही नहीं अपितु संसार में विज्ञान और संस्कृति की उपलब्धियों को अभिव्यक्त करने की क्षमता रखती है। इसमें लिखित साहित्य की परम्परा समृद्ध है। हिन्दी कैसे बने विश्व भाषा नामक पुस्तक के लेखक एवं चर्चित पत्रकार डॉ0 वेद प्रताप वैदिक भी हिन्दी भाषा की विशेषताओं को स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि हिन्दी में विश्वभाषा होने के गुण पहले से ही विद्यमान हैं। इसका एक गुण तो यह है कि हिन्दी की लिपि बड़ी सरल औरवैज्ञानिक . है। जो बोलो,सो लिखो, सो लिखो, सो बोलो। दुनिया की अनेक भाषाओं की अपनी कोई लिपि नहीं थी। विवश होकर उन्होनें बड़ी विचित्र लिपियाँ स्वीकार कीं। मंगोल भाषा को रूसी लिपि स्वीकार करनी पड़ी तथा तुर्की को रोमन लिपि। और वह भी इस तरीके से स्वीकार करनी पड़ी, जो रोमन पढ़ने और लिखने के मानक तरीकों से भिन्न है। इन्डोनेशिया की भाषा, भाषा इन्डोनेशिया है। उसका नाम ही भाषा है। वह संस्कृतमय है लेकिन लिपि उसे रोमन स्वीकार करनी पड़ी। यदि हिन्दी विश्वभाषा के स्तर पर पहुँच जाती है

तो दुनिया के कम से कम पचास देश ऐसे हैं; जो रोमन, रूसी अथवा चीन और जापान में चलने वाली चित्र लिपि के बजाए देवनागरी लिपि स्वीकार करेंगे। यदि दुनिया की पचास भाषाएँ देवनागरी को स्वीकार कर लें तो संस्कृत और हिन्दी के सैकड़ों शब्द अन्य विदेशी भाषाओं में हमें ज्यों के त्यों पढ़ने को मिल जाएँगे। लिपि की समानता हिन्दी को विश्वभाषा के दर्जे के निकट तो ले ही जाएगी, वह विश्व संस्कृति की अनेक मूलभूत समस्याओं को भी रेंखाकित करेगी। इसके अलावा देवनागरी के अन्तर्राष्ट्रीय लिपि बनने का सीधा लाभ पूरे भारत में भी दिखाई देगा। भारत की समस्त भाषाएँ, जिनका अनुभव संसार एक जैसा है और जिसमें सदियों से खुला आदान–प्रदान चला आ रहा है, उनकी एकता भी सुदृढ़ होगी।

लिपि की दृष्टि से देखा जाए तो हिन्दी की लिपि दुनिया की किसी भी लिपि से अधिक वैज्ञानिक है। यही नही अनेक ऐसी विश्व की लिपियाँ हैं जो देवनागरी जैसी ही हैं। चीन के पुराने शिलालेखों को शारदा लिपि भी देवनागरी लिपि से मिलती–जुलती है। नेपाली भाषा की लिपि देवनागरी है तथा संस्कृत,पाली और प्राकृत की लिपि भी देवनागरी है। हॉलाकि समस्त भारतीय भाषाओं की लिपियाँ अलग–अलग दिखाई देती हैं लेकिन वे भी मूलतः देवनागरी ही हैं। इसके साथ ही मराठी की लिपि भी देवनागरी है। सिन्धु सभ्यता के पुराने शिलालेखों की लिपि भी देवनागरी से मिलती जुलती है। इस दृष्टि से देखा जाए तो हिन्दी का संसार विस्तृत है। इसके साथ ही संयुक्त राष्ट्र के स्तर पर भी यदि मान्यता हो जाती है तो हिन्दी को विश्वभाषा बनने में आसानी हो जाएगी।

विश्व के सबसे बड़े लोकतन्त्र की राजभाषा होने के कारण हिन्दी के प्रति अनेक देशों में खासकर वैश्वीकरण के दौर के परिप्रेक्ष्य में ललक बढ़ी है। विकसित के लिए भारत पहले की अपेक्षा लाभप्रद साबित हुआ है। अतः इसके लिए हिन्दी का सहारा भी विश्व की द्वितीय सबसे बड़ी आबादी वाला बाजार और उपनिवेशवादियों के रूबरू भी तो अब साम्राज्यवादी न रहकर बाजार के माध्यम से पैठ बनाना हो गया है, इस लिए भी हिन्दी को अपनाना पड़ रहा है।

किसी भी राष्ट्र की अस्मिता और पहचान उस राष्ट्र की अपनी भाषा होती है। उस भाषा को दर किनार करके उनकी भाषा को, जिनके हम गुलाम थे और जो हमारे मालिक थे, प्रथम दर्जे पर लाना, उसका अनुवाद पढ़ना और उसकी जूठन परोसना बहुत बड़ा राष्ट्रीय अपमान है। यह बड़ी लज्जा स्पद बात होगी कि संयुक्त राष्ट्र में बोलने जाने वाले प्रधानमंत्रियों और प्रतिनिधियों के भाषण मूलतः अंग्रेजी में लिखे जाएँ और उनका हिन्दी अनुवाद वहाँ पढ़ा जाए। यह एक दोहरा ढोंग है। इस ढोंग के खिलाफ देश में तगड़ा माहौल खड़ा करना होगा। लोगों को पता चलना चाहिए कि मूल भाषण अंग्रेजी में लिखा जाता है और उसका हिन्दी अनुवाद संयुक्त राष्ट्र में पढ़ा जाता है। यह हिन्दी का अपमान है। मैं इसे राष्ट्रीय अपमान मानता हूँ। किसी देश का प्रधानमंत्री किसी अफसर का लिखा हुआ भाषण और उसका भी अनुवाद पढ़े। यह उनका, उनकी प्रतिभा का और उनके पद का भी अपमान है। लेकिन संयुक्त राष्ट्र में हिन्दी के मान्य हो जाने पर भारत के प्रधानमंत्री को शायद साहस होगा कि वे अपना भाषण मूल हिन्दी में लिखें और भारत के लिए इससे स्वर्णिम अवसर और कोई नहीं हो सकता था, जबकि अटल विहारी वाजपेयी जैसी मेधावी वक्ता हमारे देश के प्रधानमंत्री रहे हैं। यदि भारत का कोई प्रधानमंत्री ऐसा हो, जो हिन्दी बहुत कम जानता हो तो यह छूट जरूर मिलनी चाहिए कि वह अपना भाषण अपनी मातृभाषा में लिखे और उसका हिन्दी अनुवाद संयुक्त राष्ट्र में वह स्वयं पढ़े।[4]

यह उल्लेखनीय है कि बिना किसी बाहरी प्रेरणा के एशिया की गरिमा की आवाज सबसे पहले सन् 1901ई0 में ही स्व0 श्री राधा कृष्ण मिश्र ने अपनी एशिया कविता में की। प्रवासी भारतीयों के दुख दर्द की बात हिन्दी में ही उठाई गई है। भवानी दयाल, बनारसी दास चतुर्वेदी,तोताराम सनाढ्य और विष्णु दयाल ने प्रवासी भारतीयों के शोषण की ओर जिस भाषा में ध्यान दिलाया, वह हिन्दी थी, इस प्रकार बिना किसी राजनीतिक संरक्षण के बिना किसी सत्ता के आश्रय के सहजभाव से हिन्दी की अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि का उन्मेष किया। इस उन्मेष में न कोई दूराव था, न कोई कपट था और न ही इसमें एक उद्धारकर्ता मसीहा का भाव था। इसमें केवल सेवा और समर्पण का भाव था। जिसविश्व मानव की बात दो–दो विश्व युद्धों की विभीषिका के गुजरकर पश्चिम की मदोन्मत्त शक्तिओं ने एक अपरिहार्य आवश्यकता के रूप में ली है, वह बात हिन्दी में बहुत पहले दुख की वास्तविकता से, करूणा की अनुभूति से उद्भाषित हो चुकी थी। हिन्दी के अन्दर अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका के लिए यह एक सशक्त आधार है। यह आधार अपने इतिहास से प्राप्त आधार है, इसलिए सुदृढ़ है। यह आरोपित या उधार लिया हुआ नहीं है। अधिकतर लोग समझते हैं कि संख्या का तर्क हिन्दी को राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय महत्व दिलाने में एक प्रमुख कारण है; पर वे भूल जाते हैं कि संख्या का बल एक छोटा बल है, साहित्य की समृद्धता का भी आधार एक छोटा आधार है।[5]

हिन्दी की व्यापकता की जाए तो व्यापक स्तर पर ग्राह्म भाषा के रूप में उसकी मान्यता और शक्ति उसकी संख्या से नहीं आई है और और न केवल उसके साहित्य के महत्व से आई है। हिन्दी शक्ति की तीन अवस्थाओं से गुजरी है। इसका पहला प्रमुख कारण कि यह सदियों से अंतःप्रांतीय व्यवहार की भाषा थी। इसी भाषा का व्यवहार जहाँ तीर्थ स्थानों एवं व्यापारिक केन्द्रों में होता था वहीं रमता जोगियों के सत्संग में भी होता था। अर्थात हिन्दी बहते हुए नीर के समान थी। ग्राह्म भाषा के रूप में दूसरी विशेषतः हिन्दी की वह विरासत थी, जो उसने अप्रत्यक्ष रूप में संस्कृत से और प्रत्यक्ष रूप से मध्य देशीय प्राकृत से ली, न संस्कृत का कोई प्रदेश था, न मध्य प्राकृत का । यह समस्त प्रदेशों को जोड़ने वाली भाषाएँ थीं। हिन्दी भी इसी प्रकार की संस्कृत की तरह केन्द्रोन्मुख शक्ति की स्थापना करने वाली भाषा रही। हिन्दी भाषा का देश पूरा हिन्दुस्तान है, कोई एक प्रांत या राज्य नहीं। हिन्दी की शक्ति का तीसरा कारण है उसका जन भाषाओं से गहरा सम्बन्ध। इसी जन भाषा या लोक साहित्य तथा लोक–गायकों के साहित्य में सबसे अधिक मुखरता राष्ट्रीय चेतना की है। अवधी, भोजपुरी, बुन्देली, गढ़वाली, छत्तीसगढ़ी, कौरवी, राजस्थानी, किसी भी क्षेत्र को लीजिए, प्रत्येक में राष्ट्र की एक मूर्त कल्पना है, उसके लिए न्योछावर होने का अपूर्ण उत्साह है। इस आदान प्रदान के कारण इस लोक और शास्त्र के बीच, लघु और विशाल के बीच, ग्राम और महानगर के बीच आदान–प्रदान कराते रहने के कारण ही हिन्दी एक जीवंत भाषा के रूप में विकसित होती रही है। उसने निरन्तर कृत्रिम रूप से जड़ाऊ भाषा रूपों का तिरस्कार किया है।

संरचना की दृष्टि से हिन्दी की अपनी विशिष्ट विशेषताएँ हैं हिन्दी भाषा की संरचना की तीन विशेषताएँ ऐसी हैं, जो उसे अन्य भाषाओं से बिल्कुल अलग करती हैं। पहली विशेषता यह है कि हिन्दी विश्लेषणात्मक और संश्लेषणात्मक दोनों है। यह भाषा न चीनी भाषा की तरह एकदम विश्लेषणात्मक और ग्रीक व संस्कृत की तरह बहुत संश्लेषणात्मक। इसमें दोनों के बीच एक संतुलन है, इसलिए अर्थ की स्पष्टता और संदिग्धता की गुंजाइश कम है। यांत्रिक अनुवाद की सुविधा की दृष्टि से यह गुण बहुत उपयोगी है। हिन्दी की संरचना की दूसरी विशेषतः है इसकी शब्द रचना की क्षमता। इसलिए यह अंग्रेजी से किसी भी मायने में कम नहीं है। हिन्दी

ही एक ऐसी भाषा है जिसमें विभिन्न भाषाओं से उधार लिए शब्दों को यहाँ तक कि प्रत्ययों को (दार–इयत–इक जैसे) को भी अपनी प्रकृति में ढाल देने की क्षमता है। इस कारण सूक्ष्म अर्थ छटाओं को व्यक्त करने की एक पारदर्शी ढंग से व्यक्त करने की क्षमता का विकास हिन्दी में हुआ है। इसमें कोई दो राय नहीं कि हिन्दी को संस्कृत का एक अक्षय स्रोत प्राप्त हैः पर वही एक स्रोत नहीं है, उसी स्रोत से उद्भूत लाखों की संख्या में तद्भव शब्द भी उसके पास हैं। ये अनेक रूपांतरों के बावजूद किसी न किसी रूप में हिन्दी में मानवीकृत हो गए हैं और इनमें ऐतिहासिक यात्रा के कारण नए अर्थ के वहन की क्षमता भी आ गई है। तीसरी विशेषता उसकी वर्णमाला की है। जो की इसे लिखने का देवनागरी ढंग अक्षर को महत्व देता है। एक ध्वनि को नहीं। यही कारण है कि अक्षर को महत्व देने के कारण इनकी इकाइयों की संख्या कम हो जाती है। जिससे तकनीकी में इसे ढालना बड़ा आसान हो जाएगा। इस सम्बन्ध में जापान का उदाहरण देखा जा सकता है। क्योंकि जापान ने अपनी प्रौद्योगिकी का विकास अंग्रेजी के माध्यम से नहीं किया और बहुत कम समय में उन्होंने जापानी भाषा में संगणक (कम्प्यूटर) और बहुत सूक्ष्म और कुशल संगणक बना लिए हैं। इसी तरह भारत ने भी यह टेक्नोलॉजी प्राप्त कर ली है।

पर इन सब स्थितियों के बावजूद हिन्दी विश्व भाषा बिलकुल नहीं है, यह स्वीकार करने में हमें क्यों हिचकिचाना चाहिए? यह सत्य है। जो भाषा अपने घर में अनाथ जैसी है उसे हम विश्व के सिंहासन पर बैठाने के लिए इतने आतुर क्यों हैं। इसे नादानी या पागलपन भी कहा जा सकता है या एक स्वप्न भी। लेकिन अभी यह एक मात्र विचार भर ही है लेकिन विचार की ताकत किसी परमाणु बम से कम नहीं होती। विचार को वास्तविकता का रूप कैसे दिया जाए, यह हमारी मुख्य चिन्ता है। यह चिन्ता उन भाषाओं की भी रही है, जो आज विश्व भाषा के नाम से जानी जाती हैं। अभी तीन–चार सौ साल पहले तक लंदन की अदालतों में अंग्रेजी बोलने पर जुर्माना होता था। कुछेक डेढ़ सौ साल पहले तक लोग अपनी मूल पुस्तक अंग्रेजी में लिखते थे और उसकी भूमिका लैटिन में। ताकि विश्वजगत का उसपर ध्यान चला जाए। अंग्रेजी को अंग्रेजी का रूतबा हासिल करने के लिए सदियों तक लड़ना पड़ा। हिन्दी की लड़ाई को तो अभी सत्तर वर्ष ही हुए हैं। यदि इस लड़ाई में हिन्दी हार गई तो वह विश्वभाषा कभी नहीं बन सकती। विश्वभाषा बनने से पहले हिन्दी को भारत–भाषा बनना होगा।

यदि वास्तव में हिन्दी को विश्वभाषा बनाना है तो सबसे पहले हमें भारत में इसे राजभाषा का दर्जा देना होगा। क्योंकि लगभग सभी देशों में अपनी भाषाई पकड़ बनाए रखने के लिए अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस में करोड़ो डॉलर खर्च करते हैं। वे जानते हैं कि कूटनीति और व्यापार में लम्बे मोर्चे मारने में भाषा की भूमिका क्या है? हमारे दूतावास चाहे जिस देश में हां, अंग्रेजी की गुलामी में डूबे रहते हैं। न तो उन्हें राष्ट्रभाषा का गुमान होता है और न ही वे स्थानीय भाषा का लाभ उठा पाते हैं।

आजादी मिलने के बाद भारतीय परिवेश में भले ही हिन्दी को वह स्थान नहीं मिला जो उसे मिलना चाहिए लेकिन विदेशों में इसका प्रचार–प्रसार काफी बढ़ गया। वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी के पठन–पाठन और प्रचार–प्रसार का कार्य दो धाराओं में विभाजित हो गया। एक धारा तो वह है जिसके अंतर्गत विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जाती है। दूसरी धारा है उन देशों में जहाँ प्रवासी भारतीय या भारतवंशी बड़ी संख्या में विद्यमान हैं। जो गत शताब्दी में और वर्तमान शताब्दी में अपनी जीविका की तलाश में मजदूर और व्यापारी बनकर भारत से बाहर गए। ये भारतीय अपने साथ अपने देश की संस्कृति और धर्म को भी ले

गए, जिसे संकट और संघर्ष के दौरान भी अपनी भाषा के साथ सुरक्षित रखा। इनके धार्मिक ग्रन्थों के साथ हिन्दी इनके साथ बनी रही।[6] हालाँकि विदेशों में हिन्दी की यही धारा सर्वशक्तिमान और प्रवाहमान है। वैसे ब्रिटेन, थाईलैण्ड, मलेशिया, सिंगापुर आदि देशों में भी प्रवासी भारतीयों की बड़ी संख्या होने के कारण हिन्दी किसी न किसी रूप में विद्यमान है। भले ही अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ में हिन्दी विश्वभाषा का रूप ग्रहण करती नजर आती है पर विश्वभाषा के प्रयोजन एवं रूप के परिप्रेक्ष्य के कुछेक बातों का ध्यान देना आवश्यक हो जाता है– विश्व के दृश्य–फलक पर हम अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनिश, पुर्तगाली आदि भाषाओं को भी विश्वभाषा के रूप में व्यहृत पाते हैं। पर विश्वभाषाबनने की इनकी प्रक्रिया विश्वभाषा से भिन्न है। हिन्दी से भिन्न है। ये भाषाएँ साम्राज्यवाद की उस नींव के आधार पर फैली हैं जो प्रभुता और शक्ति की रक्तरंजित प्रवृत्ति से सींची गई थीं। इसके विपरीत विश्वभाषा हिन्दी का आधार रहा है उसके प्रति श्रमजीवियों की श्रद्धा और आत्मीयता। और जैसा कि हिन्दी, उपनिषद, रामायण, गीता की बेटी बनकर आई। यह उनके धर्म एवं संस्कृत का अंग बनकर अभी भी जीवित है।[7]

यहीं पर एक दूसरी प्रमुख विशेषता यह सामने आती है कि भारतीय प्रवासियों के साथ मॉरिशस, फीजी, त्रिनिदाद जैसे देशों में हिन्दी एक ओर सामाजिक–सांस्कृतिक प्रतीक चिह्न बनकर गई तो दूसरी तरफ, उनके आपसी व्यवहार का सम्पर्क साधन बनकर भी उभरी, यह कम महत्वपूर्ण तत्व नहीं है कि इन विभिन्न देशों में जनसमुदाय की लगभग आधी संख्या प्रवासी भारतीयों की है। यथा मॉरीशस (64 प्रतिशत), गुआना (55 प्रतिशत), फीजी (50 प्रतिशत), सूरीनाम (40 प्रतिशत), त्रिनिदाद (36 प्रतिशत)। यद्यपि लोकगीतों और अनौपचारिक सन्दर्भों में हिन्दी की बोली–भोजपुरी का प्रयोग होता है, पर जनसम्पर्क तथा सामाजिक–सांस्कृतिक अनुष्ठानों की भाषा मानक हिन्दी ही है।[8] प्रवासियों ने अपने परिश्रम और बुद्धिबल से दुनिया को यह बता दिया है कि यदि भारतीयों को सही अवसर मिल जाए तो वे पत्थर में फूल या रेगिस्तान में फूल खिला सकते हैं।'

देवनागरी लिपि दुनिया की सर्वश्रेष्ठ और सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है। और जब कभी भी इस लिपि की वैज्ञानिकता की चर्चा होती है तब हिंदी के प्रखर विरोधी भी देवनागरी के पक्ष में अपनी बात को तर्को और तथ्यों से पुष्ट करते नजर आते हैं। इसमें कोई दो राय नहीं है कि हिंदी अन्य कई भारतीय भाषाओं को अभिव्यक्त करने वाली देवनागरी लिपि दुनिया की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है। निःसंदेह देवनागरी लिपि में वे गुण हैं, वह सभी भारतीय भाषाओं को जोड़ सकती है। यह संसार की सबसे अधिक वैज्ञानिक और ध्वन्यात्मक लिपि जो है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- हिन्दी और हम,विद्यानिवास मिश्र, ग्रन्थ अकादमी, 1686,पुराना दरियागंज,नई दिल्ली 110002,प्र.स. 2001,पृ.103
- हिन्दी कैसे बने विश्व भाषा ,डॉ0 वेद प्रताप वैदिक,4695, 21 ए,दरियागंज,नई दिल्ली–110002,प्र.सं. 2014,पृ.10
- भाषाई अस्मिता और हिन्दी,रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव,द्वितीय संस्करण, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1996,पृ.57
- हिन्दी कैसे बने विश्वभाषा, डॉ0 वेद प्रकाश वैदिक, 4695, 21 ए,दरियागंज, नई दिल्ली–110002, प्र.सं. 2014,पृ.11
- हिन्दी और हम,विद्यानिवास मिश्र, ग्रन्थ अकादमी,1686,पुराना दरियागंज, नई दिल्ली 110002,प्र.स. 2001,पृ.105–106

- राष्ट्रभाषा विकास के विविध आयाम,मलिक मोहम्मद, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002,पृ0191
- भाषाई अस्मिता और हिन्दी, रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, द्वितीय संस्करण, वाणी प्रकाशन, दिल्ली,1996,पृ0 57
- भाषाई अस्मिता और हिन्दी,रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, द्वितीय संस्करण, वाणी प्रकाशन, दिल्ली,1996,पृ0 57–58

Copyright © 2016, Dr Virendra Singh Yadav. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.